युगांत

श्रीसुमित्रानंदन पंत

लोकभारती प्रकाशन
१५–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–१

लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद १ द्वारा प्रकाशित



लेखक श्री सुमित्रानंदन पंत



कापीराइट श्री सुमित्रानंदन पंत



तृतीय संस्करण १९६६



सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स
1–C बाई का बाग इलाहाबाद

मूल्य १ ५०

दो शब्द

'युगांत मे मेरे कुछ नवीन प्रयत्न सकलित हैं। इंडियन प्रिंटिंग वर्क्स के नवयुवक अध्यक्ष श्री मदन मोहन जी अग्रवाल की हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरी नवीन पुस्तक मेरी जन्म भूमि से प्रकाशित हो मुझे उनकी इच्छा स्वाभाविक जान पड़ी।

'युगांत' मे पल्लव की कोमल कांत कला का अभाव है। इसमे मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है भविष्य मे, मैं उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एव प्रदान कर सकूंगा।

इति

प्रथम सस्करण }
१९३६ ई० }

श्री सुमित्रानंदन पंत

चित्र-रेखा

हिन्दी संसार में श्री सुमित्रानन्दन जी पंत का जीवन-परिचय नहीं के बराबर है। 'युगान्त' उनकी जन्मभूमि अल्मोड़ा से प्रकाशित हो रहा है अतएव पाठकों की सुविधा के लिए हम उनके जीवन की छोटी सी चित्र रेखा इस संग्रह के साथ जोड़ देना अनुचित नहीं समझते हैं।

श्री सुमित्रानन्दन जी पंत का जन्म अल्मोड़ा से पच्चीस मील दूर कौसानी गाँव में २० मई सन् १९०० में हुआ। प्राकृतिक-सौन्दर्य की दृष्टि से कौसानी कवि की उपयुक्त जन्मभूमि है। महात्मा गांधी ने उसकी स्विटजरलैंड से तुलना कर अतिशयोक्ति नहीं की। पंत जी का कहना है कि उनके काव्य का प्राकृतिक सौन्दर्य-जगत कौसानी की वही मनोरम स्वर्ण-स्मृतियाँ हैं जो उनके बचपन के सद्य स्फुट सौंदर्य प्रिय हृदय में अनेक कोमल रंगों में अंकित हो गई थीं।

पंत जी के जन्म के छः घण्टे बाद उनकी माता जी का देहान्त हो गया जिससे वह एक प्रकार से मातृ-स्नेह से वंचित रहे। उनका लालन पालन उनकी फूफी ने किया और फिर उनके अत्यन्त स्नेहशील पिता जी ने अपने अगाध स्नेह के कारण पंत जी को माता के अभाव का कभी अनुभव नहीं होने दिया। उनके पिता स्वर्गीय पं० गंगादत्त जी पंत अत्यन्त उदार धार्मिक विचारों के मनुष्य थे। वह कौसानी टी एस्टेट में एकाउंटेन्ट के पद पर नियुक्त थे और निजी तौर से लकड़ी का कारोबार करते थे। उन्होंने उसमें अच्छा धन तथा यश उपार्जित किया था। पंत जी के तीन बड़े भाई और चार बहिनें थीं जिनमें अब केवल दो भाई और एक बहिन हैं।

छुटपन ही से पत जी अकेले रहना पसन्द करते थे। अपने समवयस्क बालकों के साथ खेलना-कूदना उन्हें अधिक प्रिय न था। हिमालय के ऊँचे ऊँचे स्वच्छ शिखर पत्थर की बडी-बडी शिलाएं घनी वन भूमि का गम्भीर दृश्य तथा करीब सात हजार फ़ीट की ऊंचाई पर बसी हुई कौसानी का स्निग्ध स्वच्छ वातावरण उनके कोमल हृदय को अपन सौंदर्य तथा वचित्र्य से अभिभूत किए रहता था। पवन प्रदेश का उज्ज्वल एकात स्वप्न-पूर्ण प्रभात-सध्या पहाडी झरने तथा ग्राम जीवन का सरलपन सबने मिलकर उनके बाल्य जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। भावुक-बालक ने प्रकृति की शात स्निग्ध गोद में बठकर कौसानी की ग्राम-पाठशाला म विद्यारम्भ किया।

ग्यारह वर्ष की उम्र में यह अल्मोडा गवनमेंट हाई स्कूल में भरती हुए। शहर म आकर उन नवीन परिस्थितियो के बीच उन्होंने अपने को अत्यन्त सकोचशील भीरु तथा अनुभव शून्य पाया। स्कूल का जीवन उनके लिए किसी प्रकार भी आकर्षक नही था। मास्टरों का आतंक तथा सहपाठियों की उच्छृखलता उनके मन में सर्वोपरि बन गई थी। अपनी आकर्षक आकृति के कारण उन्हें स्कूल तथा शहर के अभिनयों में भाग लेने का अवसर मिलने लगा। दर्शकों स प्रशसित एव उत्साहित होने के कारण उनमें आत्म आह्लाद तथा नवीन आकांक्षाएं उत्पन्न होने लगीं। सातवें क्लास में युवक नेपोलियन के घुघराले बाल बाल एक सुन्दर चित्र से आकर्षित होकर उन्हें लम्बे बाल रखने की इच्छा हुई जो अब उनके व्यक्तित्व का एक भाग बन गई है।

हिन्दी साहित्य के चिर-परिचित नाटक तथा कहानी लेखक प गोविन्दवल्लभ जी पत भी उन दिनों स्थानीय स्कूल में पढ़ते थ। सन् १९१५ में उन के मनोज प श्यामाचरण जी पत के सम्पर्क म आकर पंत जी का झुकाव हिन्दी की ओर बढ़ा। उन्हें छुटपन की चपल-स्पर्धा के कारण कुछ ही समय में हिन्दी का अच्छा ज्ञान हो गया। स्कूल की

पुस्तकों से ध्यान हटता गया और आठवें से दसवें दर्जे तक उन्होंने पर्याप्त संख्या में हिन्दी पुस्तकें मँगाकर पढ़ ली। हिन्दी के शब्दों का प्रचुर ज्ञान हो जाने के कारण उनके मित्र उन्हें मशीनरी आफ वर्ड्स कहा करते। आठवीं कक्षा से ही उन्होंने कविता लिखना भी आरम्भ किया। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में गुप्त जी की शैली की छाया रहती थी। कविता भी प्राय हरिगीतिका रोला वीर आदि प्रचलित छन्दों में होती थी। नवीं और दसवीं कक्षा में उनकी कविता के विषय तम्बाकू का धुआँ, कागज कुसुम' आदि होते, जिनमें उनकी भावी शैली का आभास मिलने लगा था। इस समय की प्राय सभी रचनाए जो कि काफी संख्या में थीं —पत जी ने नष्ट कर दी है। कुछ रचनाए प० श्यामाचरण दत्त जी पत द्वारा सम्पादित हस्तलिखित सुधाकर में हिमालय में स्थानीय 'अल्मोड़ा अखबार' तथा उस समय की मर्यादा में देखने को मिल सकती है। उन दिनों की शैली के विकास में उन्होंने प० गोविन्दवल्लभ जी पत तथा प्रसाद जी की कृतियों से सहायता ली होगी। हार नामक एक उपन्यास भी पत जी ने आठवें दर्जे में लिखा जिसकी पाडुलिपि नागरी प्रचारणी सभा में सुरक्षित है। पत जी एक साधारण कोटि के विद्यार्थी रहे हैं। पाठ्य-पुस्तकों की ओर उनकी कभी रुचि नहीं रही। हिन्दी की ओर अधिक सलग्न रहने तथा नवीन काव्य प्रेम के प्रवाह में नवयुवकोचित उत्साह के आधिक्य से वह जान के कारण वह दसवें दर्जे में फेल हो गये। उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा दूसरे साल जय नारायण हाई स्कूल बनारस से दी। बनारस में उन्हें अपनी प्रतिभा को विकसित करने का बहुत अच्छा अवसर मिला। रवीन्द्र तथा सरोजनी नायडू की कविताओं से उनके भीतर एक नवीन प्रकार के अस्पष्ट सौन्दर्य-बोध तथा माधुर्य का जन्म हुआ। यहीं उन्होंने बगला का भी थोड़ा-सा अभ्यास किया तथा चयनिका और गीताञ्जलि की कविताओं का रस लिया। 'वीणा सिरीज की कविताओं का भी श्रीगणेश यहीं हुआ। इन कविताओं में रवि बाबू की प्रतिभा के

सम्पर्क में आ जाने का थोड़ा बहुत आभास हमें मिलता है। हाई स्कूल में उन्हें हिन्दी में डिस्टिंक्शन मिला। उस साल बनारस की प्रत पाठशालाओं के कविसम्मेलन में उन्हें प्रथम पारितोषिक भी प्रदान किया गया।

हाई स्कूल पास कर लेने पर सन् १९१९ में पंत जी बनारस छोड़ कर प्रयाग आ गये और म्योर कालेज में पढ़ने लगे। वह हिन्दू हास्टल में रहते थे। इस विस्तृत हास्टल में नामक कविता जो उनकी वीणा में प्रकाशित हुई है इसी हास्टल पर लिखी गई थी।

अपने हास्टल के कवि-सम्मेलन में जब पंत जी स्वप्न नामक कविता पढ़ रहे थे तब उनके मधुर पढ़ने के ढङ्ग एवं नवीन शैली से आकर्षित हो प० शिवाधार जी पाण्डेय एम० ए० ने—जो प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में थे—उन्हें एक होनहार कवि मानकर अनेक प्रकार से प्रोत्साहित किया और उन्हें अंग्रेजी साहित्य का बोध प्राप्त कराने में अत्यंत उदारता पूर्वक यथेष्ट सहायता प्रदान की।

गर्मियों की छुट्टियों में पहाड़ लौटने पर पंत जी ने ग्रंथि लिखी। स्कूल में उनका विषय साइंस था कालेज में उन्होंने संस्कृत ले लिया। संस्कृत के कवियों के अध्ययन के कारण ग्रंथि में तत्सम शब्दों तथा अलंकारों का अधिक प्रयोग मिलता है। ग्रंथि का कथानक दुखांत है पल्लव की कविताओं में भी पंत जी का जीवन के प्रति ग्रंथि का सा करुणा विलिप्ट भाव पाया जाता है। ग्रंथि रचना के बाद ही पल्लव सिरीज की कविताओं का जन्म हुआ जिसमें पंत जी की प्रतिभा हम सबसे अधिक प्रस्फुटित मिलती है। पल्लव की रचनाओं से—जिनमें स्वप्न भी है—हिन्दी संसार का ध्यान पंत जी की प्रतिभा की ओर आकृष्ट हुआ। इन कविताओं में अंगरेजी कवियों का—खासकर शैली-टेनीसन की कल्पना सौन्दर्य-बोध और स्वर-वैचित्र्य का—काफी अच्छा प्रभाव पाया जाता है। १९२१ में महात्मा गाँधी के भाषण से प्रभावित होकर पन्त जी ने कालेज छोड़ दिया। उस साल गर्मियों में नैनीताल रहकर

न 'उच्छ्वास' लिखा। 'उच्छ्वास' का सजीव प्राकृतिक वर्णन तथा म का 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वश' नैनीताल का ही चित्रदर्शन इन दो तीन वर्षों के भीतर ही पल्लव सिरीज का अधिकांश कविताएँ ी गई थी। अगरेजी कवियों के सौंदय-बोध तथा पवत प्रदेशों के तिक सौंदय से अपने कल्पना-जगत का निर्माण कर लने पर अपने की बाह्य विपरीत दशा से अपने अन्तजगत का सही साम्य न पाने कारण पंत जी का व्यथित चित्त १९२० से दशन शास्त्र की ओर भुका। त क्या' क्या' कैसे आदि प्रश्न उनके मस्तिष्क को उद्वेलित करने । अपनी शकाओं का समाधान करने के लिए उन्होंने पूर्वी पश्चिमी नशास्त्र तथा मनोविज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया। परिवतन विता में थोडी बहुत उनकी इस जिज्ञासा की झलक मिलती है किन्तु ा उनकी तब की रचनाओं से जान पडता है दशनशास्त्र के यतकिञ्चित न से उन्हें मानसिक शांति नहीं मिली है। उन्हीं दिनों उन्होंने अपने त्र की सहायता से ओमर खयाम का फारसी से अनुवाद किया जो भी अप्रकाशित है।

१९२८ में पत जी के पिता का देहान्त हो गया। मानसिक और रिवारिक अशान्ति के कारण वे रुग्ण हो गये। १९२९ में प्रख्यात सजन ाक्टर नीलाम्बर जी जोशी की सहृदय चिकित्सा द्वारा उन्होंने नवीन वास्थ्य-लाभ किया। उन्हीं दिनों उनके हृदय में जीवन के प्रति एक नवीन ष्टिकोण का उदय हो चुका था।

पत जी का हृदय मथन एक नवीन आशावाद में परिणत हो गया जिसकी झलक 'गुंजन' की कविताओं में यथेष्ट मात्रा में दखने को मिलती है। १९३१ से १९३४ तक का समय उन्होंने कुँवर सुरेशसिंह जी के ाथ कालाकाँकर में व्यतीत किया। १९३० में उन्होंने अवगुंठन कहानी तथा मधुवन आदि कविताएँ लिखी। १९३२ में गुंजन लिखा। पल्लव े बाद गुंजन में पंत जी की काव्य धारा प्राकृतिक क्षेत्र से हटकर मानव-

जीवन के क्षेत्र में अवतरित हो गई। उनके उस समय के मानसिक जीवन की प्रतिच्छवि उसमें स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इन्ही दिनों कुछ मौलिक सिद्धान्तों की सृष्टि कर उन्होंने १९३३ में ज्योत्स्ना के रूपक का निर्माण किया। ज्योत्स्ना में उनकी विचार धारा विकसित मानव वाद तथा काल्पनिक समाजवाद के सामञ्जस्य के रूप में उन्मीलित हुई है। उनकी पाँच कहानियों में जो १९३६ में प्रकाशित हुई हैं ज्योत्स्ना की विचार धारा ने अधिक वास्तविक रूप धारण कर लिया है।

अब उनकी नवीन कविताओं का संग्रह युगान्त के रूप में पाठकों के सामने उपस्थित हो रहा है। इन रचनाओं में उनकी शैली के अनुरूप ही उनके विचार भी अधिक स्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक हो गये हैं। हमारा विश्वास है भविष्य में पंत जी एक महान कलाकार के रूप में प्रकट होकर हिन्दी प्रेमियों तथा देशवासियों की वास्तविक सेवा कर सकेंगे। एवमस्तु।

लखनऊ विश्वविद्यालय
५. ११. ३६

—दीनानाथ पंत

अनुक्रम

१

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण।
हिम ताप पीत मधुवात भीत
तुम वीतराग, जड पुराचीन।।

निष्प्राण विगत युग! मृत विहग!
जग नीड शब्द औ श्वास हीन,
च्युत अस्तव्यस्त पखों-से तुम
झर झर अनंत में हो विलीन।

कंकाल-जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर—पल्लव लाली!
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली!

मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली!

(फरवरी '३४)

२

गा, कोकिल बरसा पावक कण !

नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वस भ्र श जग के जड बधन !
पावक-पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन !

गा, कोकिल भर स्वर म कपन !

झरें जाति कुल वर्ण पर्ण घन,
अध नीड-से रूढि रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्र गत राग-द्वेष रण
झरें मरें विस्मृति म तत्क्षण !

गा कोकिल, गा,—कर मत चिंतन !

नवल रुधिर से भर पल्लव-तन
नवल स्नेह-सौरभ से यौवन
कर मजरित नव्य जग जीवन
गूंज उठें पी-पी मधु सब जन !

गा, कोकिल, नव गान कर सजन ।

रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी वेश, भाव नव शोभन,
स्नेह, सुहृदता हा मानस धन,
करें मनुज नव जीवन यापन ।
गा कोकिल, सदेश सनातन ।

मानव दिव्य स्फुलिंग चिरतन,
वह न देह का नश्वर रज कण ।
दश काल हैं उसे न बधन,
मानव का परिचय मानवपन ।
कोकिल गा, मुकुलित हा दिशि क्षण ।

(एप्रिल ३५

३

झर पडता जीवन-डाली से
मैं पतझड का सा जीण पात !—
केवल केवल जग-कानन म
लाने फिर से मधु का प्रभात !

मधु का प्रभात ! —लद-लद जाती
वभव से जग की डाल डाल,
कलि कलि किसलय मे जल उठती
सुदरता की स्वर्गीय ज्वाल !

नव मधु प्रभात ! —गूजते मधुर
उर उर म नव आशाऽभिलाष
सुख-सौरभ, जीवन कलरव से
भर जाता सूना महाकाश !

आ मधु प्रभात !—जग के तम म
भरती चतना अमर प्रकाश,
मुरझाए मानस मुकुला म
पाती नव मानवता विकास !

मधु प्रात! मुक्त नभ मे सस्मित
नाचती धरित्री मुक्त पाश!
रवि शशि केवल साक्षी होते
अविराम प्रेम करता प्रकाश!

मैं झरता जीवन-डाली से
साह्लाद, शिशिर का शीण पात!
फिर से जगती के कानन मे
आ जाता नव मधु का प्रभात!

(एप्रिल ३५)

४

चचल पग दीपशिखा के धर
गृह मग, वन मे आया वसत !
सुलगा फाल्गुन का सूनापन
सौन्दय शिखाओ म अनत !

सौरभ की शीतल ज्वाला से
फला उर उर मे मधुर दाह
आया वसत भर पृथ्वी पर
स्वर्गिक सुदरता का प्रवाह !

पल्लव पल्लव मे नवल रुधिर
पत्रो मे मासल रग खिला,
आया नीली पीली लौ से
पुष्पा के चित्रित दीप जला !

अधरा की लाली से चुपके
कोमल गुलाब के गाल लजा,
आया पखडिया को काले—
पीले धब्बा से सहज सजा !

कलि के पलकों मे मिलन स्वप्न,
अलि के अंतर मे प्रणय गान
लेकर आया, प्रेमी वसत,—
आकुल जड चेतन स्नेह प्राण।

काली कोकिल।—सुलगा उर मे
स्वरमयी वेदना का अगार,
आया वसत, घोषित दिगत
करती, भर पावक की पुकार।

आ, प्रिये! निखिल ये रूप रग
रिल मिल अंतर मे स्वर अनत
रचते सजीव जो प्रणय मूर्ति
उसकी छाया, आया वसत।

(एप्रिल '३५)

५

विद्रुम औ मरकत की छाया
सोने चादी का सूर्यातप,
हिम परिमल की रेशमी वायु
शत रत्न छाय खग चित्रित नभ !

पतझड के कृश पीले तन पर
पल्लवित तरुण लावण्य लोक
शीतल हरीतिमा की ज्वाला
दिशि दिशि फली कोमला'लोक !
आह्लाद, प्रेम औ यौवन का
नव स्वग, सद्य सौदय सष्टि
मजरित प्रकृति मुकुलित दिगत,
कूजन गुजन की व्योम वष्टि !

—लो, चित्र शलभ सी पख खोल
उडने को अब कुसुमित घाटी,—
यह है अल्मोडे का वसत,
खिल पडी निखिल पवत पाटी !

(मर्द ३५)

६

जगती के जन - पथ, कानन मे
तुम गाओ विहग ! अनादि गान,
चिर शून्य शिशिर पीडित जग मे
निज अमर स्वरो से भरो प्राण !

जल, स्थल, समीर, नभ मे व्यापक
छेडो उर की पावक पुकार
बहु शाखाग्रा की जगती मे
बरसा जीवन सगीत प्यार !
तुम कहो, गीत खग ! डालो मे
जो जाग पडी कलिया अजान,
यह विटपा का श्रम - पुण्य नही,
मधु ऋतु का मुक्त, अनत दान !

जो भाए स्वप्नो के तम में
वे जागेंगे—यह सत्य बात,
जो देख चुके जीवन निशीथ
वे देखेंगे जीवन प्रभात !

(मई '३५)

वे चहक रही कुन्जो म चचल सुदर
चिडियाँ उर का सुख बरस रहा स्वर स्वर पर !
पत्रो पुष्पो से टपक रहा स्वर्णातिप
प्रात समीर के मृदु स्पर्शों से कप कप !
शत कुसुमो म हस रहा कुन्ज उडु उज्वल,
लगता सारा जग सद्य स्मित ज्यो शतदल !
है पूण प्राकृतिक सत्य ! किन्तु मानव जग,
क्या म्लान तुम्हारे कुन्ज कुसुम आतप खग ?
जो एक असीम, अखड मधुर व्यापकता
खो गई तुम्हारी वह जीवन सार्थकता !
लगती विश्री औ विकृत आज मानव कृति
एकत्व शून्य है विश्व मानवी सस्कृति !
(मई '४५)

८

वे डूब गए--सब डूब गए
दुदम, उदग्र शिर अद्रि शिखर!
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप मे
लो, स्वरा स्वण अब सब भूधर!
पल मे कोमल पड, पिघल उठे
सुदर बन, जड, निमम प्रस्तर
सब मत्र मुग्ध हो जडित हुए
लहरा-से चित्रित लहरो पर!

मानव जग मे गिरि कारा सी
गत युग की सस्कृतिया दुर्धर
बदिनी किए मानवता को
रच देश जाति की भित्ति अमर!
य डूबेंगी--सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकास,
हस देगा स्वर्णिम वज्र-लोह
छू मानव आत्मा का प्रकाश!

(एप्रिल '३६)

९

तारा का नभ ! नारो का नभ !
सुदर समृद्ध आदश सष्टि !
जग के अनादि पथ दर्शक वे
मानव पर उनकी लगी दष्टि !
वे देव वाल भू को घेर
भावी भव की कर रहे पुष्टि !

रोबा की कलिया सा प्रभूत
वह भावी जग जीवन विकास !
मानव का विश्व मिलन पवित्र
चेतन आत्माओं का प्रकाश !

तारा का नभ ! तारा का नभ !
अकिन अपूव आदश मष्टि !
शाश्वत शोभा का खिला स्वग
अद हाने को है पुष्प वष्टि !
चादनी चतना की अमद
अग जग को छू द रही तुष्टि !

(अक्त्वर ३५)

१०

जीवन का फल, जीवन का फल।
यह चिर यौवन श्री से मासल।
इसके रस म आनद भरा,
इसवा सौन्दय सदव हरा,
पा दुख सुख का छाया प्रकाश
परिपक्व हुआ इसका विकास,
इसकी मिठास है मधुर प्रेम,
औ अमर बीज चिर विश्व क्षेम।
जीवन का फल, जीवन का फल।
इसका रस लो,—हो ज म सफल।
तीखे, चमकीले दात चुभा
चाखो इसको, क्यो रहे लुभा?
निर्भीक बनो, साहसी, शक्त,
जीवन प्रेमी,—मत हो विरक्त।
सुदर, इच्छा की धरो आग,
प्रिय जगती पर दयिताऽनुराग।

(मई '३५)

बढो अभय विश्वास चरण धर।
सोचो वथा न भव भय कातर।
ज्वाला के विश्वास के चरण
जीवन मरण समुद्र सतरण
सुख दुख की लहरा के शिर पर
पग धर पार करो भव सागर।
बढो बढो विश्वास चरण धर।
क्या जीवन ? क्या ? क्या जग कारण ?
पाप पुण्य सुख दुख का वारण ?
व्यथ तक! यह भव लोकोत्तर
बढती लहर बुद्धि से दुस्तर।
पार करो विश्वास चरण धर।
जीवन-पथ तमिस्रमय निजन
हरती भव तम एक लघु किरण
यदि विश्वास हृदय म अणु भर
देंगे पथ तुमको गिरि सागर,
बढो अमर विश्वास चरण धर।
(मई ३५)

१२

गजन कर मानव केशरि !
ममस्पृह गजन ,—
जग जावे जग म फिर से
सोया मानवपन !

कांप उठे मानस की अघ
गुहाओ का तम
अक्षम क्षमताशील बनें ,
जावें दुविधा भ्रम !

निभय जग जीवन कानन मे
कर हे विचरण ,
कांप, मरें गत सब मनुजता के
मकट गण !

प्रखर नखर नव जीवन की
लालसा गडा कर
छिन्न भिन्न करदे गत युग के
शव को, दुधर !

गजन कर, मानव केशरि !
प्राणप्रद गजन,
जागें नव युग के खग
बरसा जीवन कजन !

(अक्तूबर ३५)

१३

वासो का झुरमुट—
सध्या का झुटपुट—
हैं चहक रही चिडिया
टी-वी-टी—टुट-टुट !

वे ढाल ढाल कर उर अपने
हैं वरसा रही मधुर सपने
श्रम जजर विधुर चराचर पर,
गा गीत स्नेह वेदना सने !

ये नाप रहे निज घर का मग
वुछ श्रमजीवी धर डगमग डग,
भारी है जीवन ! भारी पग !

आ, गा गा शत शत महृदय खग,
सध्या विखरा निज स्वण सुमग
औ गध पवन झल मद व्यजन
भर रह नया इनम जीवन,
ढीली हैं जिनकी रग रग !

युगांत

—यह लौकिक औ प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,—सृष्टि के साथ पला!

× × ×

गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की सन्ध्या की छवि!
गा सके खगों सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात,—फिर आवे रवि!

(अक्टूबर ३५)

१४

जग जीवन मे जो चिर महान
सौन्दयपूर्ण औ' सत्य प्राण,
मैं उसका प्रेमी बनूँ, नाथ!
जिसमे मानव हित हो समान!

जिससे जीवन मे मिले शक्ति,
छूटें भय, सशय, अध भक्ति,
मैं वह प्रकाश बन सकूँ, नाथ!
मिल जावें जिसमे निखिल व्यक्ति!

दिशि दिशि मे प्रेम प्रभा प्रसार,
हर भेद भाव का अधकार,
मैं खोल सकू चिर मुदे, नाथ!
मानव के उर के स्वग द्वार!

पाकर, प्रभु! तुमसे अमर दान
करने मानव का परित्राण,
ला सकू विश्व मे एक बार
फिर से नव जीवन का विहान!

(मई '३५)

१५

जो दीन हीन, पीड़ित, निबल,
मैं हू उनका जीवन सबल!
जो मोह छिन्न जग म विभक्त,
वे मुझ मे मिलें, बनें सशक्त!
जो ग्रहपूण, वे ग्रध कूप,
जो नम्र उठें बन कीर्ति स्तूप!
जो छिन्न भिन्न, जल कण ग्रसार,
जो मिले बने सागर ग्रपार!
जग नामरूपमय ग्रधकार,
मैं चिर प्रकाश मैं मुक्ति द्वार!

(मई ३५)

१६

शत बाहु पाद, शत नाम रूप,
शत मन, इच्छा वाणी, विचार,
शत राग द्वेष शत क्षुधा काम —
यह जग जीवन का अधकार।

शत मिथ्या वाद विवाद, तक
शत रूढि नीति, शत धर्म द्वार,
शिक्षा, सस्कृति, सस्था, समाज,—
यह पशु मानव का अहकार।

—यह दिशि पल का तम, इन्द्रजाल
बहु भेद जय, भव क्लेश भार,
प्रभु। बाँध एकता मे अपनी
भर दें इसमें अमरत्व सार।

(मई ३५)

१७

ए मिट्टी के ढेले अजान !
तू जड अथवा चेतना प्राण ?
क्या जडता चेतनता समान,
निगुण, निसग नि स्पृह वितान ?

कितने तृण, पौधे मुकुल सुमन
ससति के रूप रग मोहन,
ढीले कर तेरे जड बधन
आए औ गए ! (यही क्या मन ?)

अब हुआ स्वप्न मधु का जीवन
विस्मृत सुख दुख स्मृति के बधन !
खुल गया शून्यमय अवगुठन
अज्ञेय सत्य तू जड चेतन !

(जून ३५)

सोगई स्वग की स्वए किरण
छू जग जीवन का ग्रधकार,
मानस के सूने-से तम को
दिशि पल के स्वप्ना मे संवार।

गुथ गए ग्रजान तिमिर प्रकाश
दे-दे जग जीवन को विकास,
बहु रूप रग रेखाग्रा मे
भर विरह मिलन का ग्रश्रु हास।
घुन जग का दुगम ग्रधकार,
चुन नाम रूप का ग्रमृत सार,
मैं खोज रहा खोया प्रकाश
सुलक्षा जीवन के तार तार।

सो गई स्वग की ग्रमर किरण
कुसुमित कर जग का ग्रधकार,
जाने कब भूल पडा निज को,
मैं उसको फिर इसको निहार!

(एप्रिल ३६)

१९

सुदरता का आलोक स्रोत
है फूट पडा मेरे मन मे,
जिससे नव जीवन का प्रभात
होगा फिर जग के आगन मे।

मेरा स्वर होगा जग का स्वर
मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानस का स्वग लोक
उतरेगा भू पर नई वार।

सुदरता का ससार नवल
अकुरित हुआ मेरे मन म,
जिसकी नव मासल हरीतिमा
फलगी जग के गृह वन म।

होगा पल्लवित रुधिर मेरा
बन जग के जीवन का वसत,
मेरा मन हागा जग का मन
औ मैं हूगा जग का अनत।

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित, भीतर,
सौन्दय, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सके नहीं जग मे वाहर।

(एप्रिल '३६)

२०

नव हे नव हे !
नव नव सुषमा से मंडित हो
चिर पुराण भव हे !
नव हे !

नव ऊषा-सन्ध्या अभिनंदित
नव नव ऋतुमयि म शशि शोभित,
विस्मित हो देखूँ मैं अतुलित
जीवन वभव हे !
नव हे !

नव शशव यौवन हिल्लोलित
जन्म मरण से हो जग दोलित,
नव इच्छाओं का हो उर म
आकुल पिक रव हे !
नव हे !—

बांधे रहे मुक्ति को बंधन,
हो सीमा असीम - अवलंबन,
द्वार खड़े हों नित नव सुख दुख,
विजय पराभव है !
नव है !

अपनी इच्छा से निर्मित जग,
कल्पित सुख दुख के अस्थिर पग
मेरे जीवन से हो जीवित
यह जग का शव है !
नव है !

(जुलाई '३४)

२१

बाधोऽ, छवि के नव बधन बाधो !
नव नव आशाऽकाक्षाओ मे
तन मन जीवन बाधो !
छवि के नव—

भाव रूप मे, गीत स्वरा मे ,
गध कुसुम मे स्मिति अधरो मे ,
जीवन के तम की वेणी मे
निज प्रकाश कण बाधो !
छवि के नव—

सुम से दुख औ प्रलय से सजन
चिर आत्मा से अस्थिर रज तन
महामरण को जग जीवन का
दे आलिगन बाँधो !
छवि के नव—

बांधो जलनिधि लघु जल कण मे ,
महाकाल को कवलित क्षण मे ,
फिर फिर अपनेपन को मुझ मे
चिर जीवन घन ! बांधो
छवि के नव—

(जुलाई '३४)

२३

वह विजन चादनी की घाटी
छाई मृदु वन तरु गध जहा,
नीबू आड़ू के मुकुलो के
मद से मलयानिल लदा वहा !

सौरभ श्लथ हो जाते तन मन
बिछते झर झर मृदु सुमन शयन
जिन पर छन कपित पत्रो से
लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ तहा !

श्रो कोकिल का कोमल कूजन,
उकसाता आकुल उर कपन,
यौवन का री वह मधुर स्वग,
जीवन बाधाए वहाँ कहाँ ?

(मई ३५)

ı

छाया ?

वह लेटी है तरु छाया मे,
सध्या विहार को ग्राया मैं।
मृदु बाह मोड, उपघान किए,
ज्यो प्रेम लालसा पान किए,
उभरे उरोज, कुतल खोले,
एकाकिनि, कोई क्या बोले?

वह सुदर है सावली सही,
तरुणी है,—हो षोडशी रही,
विवसना, लता सी तन्वगिनि,
निजन मे क्षण भर की सगिनि।

वह जागी है ग्रथवा सोई?
मूर्छित या स्वप्न मूढ कोई?
नारी कि ग्रप्सरा या माया?
ग्रथवा केवल तरु की छाया?

(एप्रिल '३५)

छाया

खोलो, मुख से घू घट खोलो,
हे चिर अवगुठनमयि बोलो !
क्या तुम केवल चिर अवगुठन
अथवा भीतर जीवन कपन ?

कल्पना मात्र मृदु देह लता
पा उध्व व्रह्म माया विनता !
है स्पृश्य स्पश का नहीं पता,
है दश्य दष्टि पर सके बता !

पट पर पट केवल तम अपार,
पट पर पट खुले न मिला पार !
सखि हटा अपरिचय अधकार
खोलो रहस्य के मम द्वार !
मैं हार गया तह छील छील,
आखो से प्रिय छवि लील लील,
मैं हू या तुम ? यह कसा छल !
या हम दोना दोना के बल ?

तुम मे कवि का मन गया समा,
तुम कवि के मन की हो सुषमा,
हम दो भी हैं या नित्य एक?
तब कोई किसको सके देख?

ओ मौन चिरंतन तम प्रकाश,
चिर अवचनीय आश्चय पाश!
तुम अतल गत अविगत, अकूल,
फली अनंत मे विना मूल!
अज्ञेय गुह्य, अग जग छाई,
माया, मोहिनि, सँग-सँग आई!
तुम कुहुकिनि, जग की मोह निशा,
मैं रहूँ सत्य तुम रहो मृषा!

(एप्रिल '३६)

शुक्र !

छाया के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगत के शब्द मौन,
रवि के जाते स्थल पर आते
कहते तुम तम से चमक—कौन ?

सध्या के सोने के नभ पर
तुम उज्वल हीरक सदश जडे
उदयाचल पर नीखते प्रात
अगूठे के बल हुए खडे !

अब सूनी दिशि औ श्रात वायु,
कुम्हलाई पकज कली सष्टि,
तुम डाल विश्व पर करुण प्रभा
अविराम कर रहे प्रेम वृष्टि !

औ छोटे शशि चाँदी के उड !
जब जब फल तम का विनाश,
तुम दिव्य दूत-से उतर शीघ्र
बरसाओ निज स्वर्गिक प्रकाश !

(मई ३५)

खद्योत

अंधियाली घाटी म सहसा
हरित स्फुलिंग सदृश फूटा वह।
वह उड़ता दीपक निशीथ का,—
तारा सा आकर टूटा वह।

जीवन के घन अंधकार में
मानव आत्मा का प्रकाश कण
जग सहसा, ज्योतित कर देता
मानस के चिर गुह्य कुञ्ज वन।

(मई ’३५)

सृष्टि

मिट्टी का गहरा अधकार
डूबा है उसम एक बीज,—
वह खो न गया मिट्टी न बना
कोदो सरसो से क्षुद्र चीज!

उस छोटे उर मे छिपे हुए
शत डाल पात औ स्कध मूल
गहरी हरीतिमा की ससति,
बहु रूप रग, फल और फूल!

वह है मुट्ठी म वद किए
वट के पादप का महाऽकार,
ससार एक! आश्चय एक!
वह एक वद सागर अपार!

वन्दी उसमे जीवन अकुर
जो तोड निखिल जग के बधन —
पान को है निज सत्व—मुक्ति!
जड निद्रा स जग बन चतन!

था, भेद न सका सजन रहस्य
कोई भी! वह जो क्षुद्र पोत,
उसमें अनंत का है निवास,
वह जग जीवन से ओत प्रोत!

मिट्टी का गहरा अंधकार,
सोया है उसमें एक बीज,
उसका प्रकाश उसके भीतर,
वह अमर पुत्र! वह तुच्छ चीज?

(मई '३५)

ताज

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन ?
जब विपण्ण निर्जीव पडा हो जग का जीवन !
स्फटिक सौध म हा शृ गार मरण का शोभन
नग्न क्षुधातुर, वास विहीन रहे जीवित जन ?

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान प्रेत औ छाया से रति ?
प्रेम अचना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर ककाल भरें जीवन का प्रागण ?

शव को दें हम रूप रग आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बनादें शव का ?
युग युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर
मानव के मोहाध हृदय म किए हुए घर !

भूल गए हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के हैं मृतक जीवितो का है ईश्वर !

(अक्टूबर ३५)

मानव !

सुदर हैं विहग, सुमन सुदर,
मानव ! तुम सबसे सुदरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि मे चिर निरुपम !
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौदय प्ररोह अग,
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति,
छाया प्रकाश के रूप रग !

धावित कृश नील शिराओं में
मदिरा से मादक रुधिर धार,
आँखें हैं दो लावण्य लोक,
स्वर म निसर्ग सगीत सार !
पृथु उर, उरोज, ज्यो सर, सरोज,
दृढ बाहु प्रलब प्रेम बधन,
पीनोरु स्कध जीवन तरु के,
कर, पद, अगुलि, नख शिख शोभन !

यौवन की मासल स्वस्थ गध,
नव युग्मो का जीवनोत्सग।
आह्लाद अखिल सौदय अखिल
ओ प्रथम प्रेम का मधुर स्वग।
आशाऽभिलाष, उच्चाकाक्षा,
उद्यम अजस्र विघ्नो पर जय,
विश्वास, असत सत का विवेक
दढ श्रद्धा सत्य प्रेम अक्षय।
मानसी भूतियाँ ये अमद,
सहृदयता त्याग सहानुभूति —
जो स्तभ सभ्यता के पार्थिव
सस्कृति स्वर्गीय —स्वभाव - पूर्ति।

मानव का मानव पर प्रत्यय
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक एक सब म प्रकाश।
प्रभु का अनत वरदान तुम्हें
उपभोग करो प्रतिक्षण नव नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव।

(एप्रिल ३५)

तितली

नीली, पीली औ चटकीली
पखो की प्रिय पँखडिया खोल,
प्रिय तिली ! फूल सी ही फूली
तुम किस सुख मे हो रही डोल?

चादी सा फला है प्रवाश,
चचल अचल सा मलयानिल,
है दमक रही दोपहरी मे
गिरि घाटी सौ रगो मे खिल !

तुम मधु की कुसुमित अप्सरि सी
उड उड फूलो को बरसाती,
शत इद्रचाप रच रच प्रतिपल
किस मधुर गीति लय मे गाती?

तुमने यह कुसुम विहग लिवास
क्या अपने सुख से स्वय चुना?
छाया प्रकाश से या जग के
रेशमी परो का रग चुना?

क्या बाहर से आया, रंगिणि !
उर का यह आतप, यह हुलास ?
या फूलों से ली अनिल-कुसुम !
तुमने मन के मधु की मिठास ?
चांदी का चमकीला आतप,
हिम-परिमल चंचल मलयानिल,
है दमक रही गिरि की घाटी
शत रत्न छाय रंगों में खिल !

— चित्रिणि ! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौन्दर्य सृजन ?
'वह स्वर्ग छिपा उर के भीतर'—
क्या कहती यही सुमन चेतन ?

(मई ३५)

सध्या

कहो, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि मे आप,
सुनहला फला केश कलाप
मधुर, मथर, मृदु, मौन ।

मूँद अधरा मे मधुपाऽनाप,
पलक मे निमिप, पदो मे चाप,
भाव सकुल, वकिम, भ्रू चाप,
मौन, केवल तुम मौन ।

ग्रीव तियक्, चपक द्यु ति गात
नयन मुकुलित नत मुख जलजात,
देह छवि-छाया मे दिन रात,
कहाँ रहती तुम कौन ?

अनिल पुलकित स्वर्णाचल लोल,
मधुर नूपुर ध्वनि खग कुल रोल,
सीप-से जलदो के पर खोल,
उड रही नभ मे मौन ।

युगात

लाज से अरुण अरुण सुकपोल,
मदिर अधरा की सुरा अमोल,
बने पावस घन स्वण हिंदोल,
कहो एकाकिनि कौन?
मधुर, मथर तुम मौन!

(सितम्बर '३०)

बापू के प्रति

तुम मासहीन, तुम रक्तहीन,
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन !

तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमे असार भव शून्य लीन
आधार अमर होगी जिसपर
भावी की सस्कृति समासीन !

तुम मास, तुम्ही हो रक्त अस्थि ,—
निर्मित जिनसे नव युग का तन,
तुम धन्य ! तुम्हारा नि स्व त्याग
है विश्व भोग का वर साधन,

इस भस्मकाम तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने बानो से मानवपन !

सदियो का द`य तमिस्र तूम,
धुन तुमने कात प्रकाश सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढक दी
बुन नव सस्कृत मनुजत्व पूत!

जन पीडित छूनो से प्रभूत,
छू अमृत स्पश से हे अछूत!
तुमने पावन कर, मुक्त किए
मृत सस्कृतिया के विकृत भूत!

सुख भोग खोजने आते सब
आये तुम करने सत्य खोज
जग की मिट्टी के पुतले जन
तुम आत्मा के, मन के मनाज!

जडता हिसा स्पधा म भर
चेतना अहिसा नम्र ओज,
पशुता का पकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज!

पशुबल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति,

वर श्रम प्रसूति से की कृतार्थ
तुमने विचार परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त,
सर्वस्व त्याग को बना भुक्ति!

सहयोग सिखा शासित जन को
शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बल प्रहार,

बहु भेद विग्रहों में खोई
ली जीर्ण जाति क्षय से उबार
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश
औ अंधकार को अंधकार!

उर के चरखे मे कात सूक्ष्म
युग युग का विषय जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद!

रँग रग खद्दर के सूत्रो मे
नव जीवन आशा, स्पृहा, ह्लाद
मानवी कला के सूत्रधार,
हर दिया यत्र कौशल प्रवाद!

जडवाद जर्जरित जग म तुम
अवतरित हुए आत्मा महान,
यत्राभिभूत युग मे करने
मानव जीवन का परित्राण,

बहु छाया बिम्बो म खोया
पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान,
फिर रक्त मास प्रतिमाओ म
फूँकन सत्य से अमर प्राण!

ससार छोड कर ग्रहण किया
नर जीवन का परमार्थ सार,
अपवाद बने, मानवता के
ध्रुव नियमो का करने प्रचार,

हो सावजनिकता जयी, अजित!
तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने
तुम हुए अलौकिक, हे उदार!

मगल शशि लोलुप मानव थे
विस्मित ब्रह्माड परिधि विलोक
तुम केन्द्र खोजने आए तब
सब में व्यापक, गत राग शोक,

पशु पक्षी पुष्पो से प्रेरित
उद्दाम-काम जन क्राति रोक,
जीवन इच्छा का आत्मा के
वश मे रख, शासित किए लोक!

था व्याप्त दिशावधि ध्वात भ्रात
इतिहास विश्व उद्भव प्रमाण,
वह हेतु बुद्धि जड वस्तुवाद
मानव सस्कृति के बने प्राण

थे राष्ट्र ग्रथ जन, साम्यवाद
छल सभ्य जगत के शिष्ट मान
भू पर रहते थे मनुज नही
बहु रूढि रीति प्रेता समान—

तुम विश्व मच पर हुए उदित
बन जग जीवन के सूत्रधार
पट पर पट उठा दिए मन से
कर नर चरित्र का नवोद्धार

आत्मा को विषयाधार बना
दिशि पल के दृश्या को सवार
गा गा—एकोह वहु स्याम
हर लिए भेद, भव भीति भार!

एकता इष्ट निर्देश किया,
जग खोज रहा था जब समता
अंतर शासन चिर राम राज्य,
औ' बाह्य, आत्महन् अक्षमता,

हो कर्म निरत जन, राग विरत,
रति विरति-व्यतिक्रम भ्रम-ममता,
प्रतिक्रिया क्रिया साधन अवयव,
है सत्य सिद्ध, गति-यति क्षमता।

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तंत्र
शासन-चालन के कृतक यान,
मानस, मानुषी, विकास शास्त्र
हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान,

भौतिक विज्ञानों की प्रसूति
जीवन-उपकरण-चयन-प्रधान,
मथ सूक्ष्म-स्थूल जग बोले तुम—
मानव मानवता का विधान।

साम्राज्यवाद था कस, बदिनी
मानवता पशु बलाऽऽक्रात,
शृखला दासता, प्रहरी बहु
निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रात,

कारागृह मे दे दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त, कात,
जन शोषण की बढती यमुना
तुमने की नत पद प्रणत, शात !

कारा थी सस्कृति विगत, भित्ति
बहु धर्म जाति - गत रूप - नाम,
बदी जग जीवन, भू विभक्त
विज्ञान मूढ जन प्रकृति काम,

आए तुम मुक्त पुरुष, कहने—
मिथ्या जड बधन, सत्य राम,
नानृत जयति सत्य, मा भ
जय ज्ञान ज्योति, तुमको प्रणाम !

(एप्रिल ३६)